International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

हरियाणा में कृषि नीतियों का विकास और किसान आंदोलनों पर उनका प्रभाव

सर्वजीत
शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक।

सार

यह शोध–पत्र हरियाणा राज्य में कृषि नीतियों के विकास और उनके किसानों पर पड़े प्रभाव का एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। हरियाणा का गठन 1966 में हुआ और इसके बाद राज्य ने कृषि क्षेत्र में तीव्र प्रगति की। विशेष रूप से हरित क्रांति के दौरान उच्च उत्पादकता वाले बीज, रासायनिक उर्वरक, आधुनिक मशीनरी और सिंचाई सुविधाओं के विस्तार ने कृषि उत्पादन को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया। परिणामस्वरूप, हरियाणा देश के प्रमुख खाद्यान्न उत्पादक राज्यों में शामिल हो गया और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देने लगा। हालाँकि, इस विकास के साथ कई जटिल समस्याएँ भी उभरकर सामने आईं। कृषि उत्पादन में वृद्धि के बावजूद किसानों की आय स्थिर नहीं रही, बल्कि लागत में निरंतर वृद्धि, ऋणग्रस्तता, जल संकट, भूमि की उर्वरता में कमी और बाजार की अनिश्चितता जैसी समस्याएँ बढ़ती गईं। इस शोध–पत्र में इन समस्याओं को सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय तीनों दृष्टिकोणों से समझने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य 1966 से 2020 तक हरियाणा की कृषि नीतियों के विकासक्रम को समझना और यह विश्लेषण करना है कि इन नीतियों ने किसान आंदोलनों को किस प्रकार प्रभावित किया। न्यूनतम समर्थन मूल्य, सब्सिडी, सिंचाई विस्तार और फसल विविधीकरण जैसी नीतियाँ किसानों के लिए सहायक सिद्ध हुईं, परंतु इनकी सीमाएँ भी स्पष्ट हुईं। विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों तक इन नीतियों का लाभ समान रूप से नहीं पहुँच पाया। इन नीतिगत असमानताओं और कमियों के कारण किसानों में असंतोष बढ़ा, जो समय–समय पर आंदोलनों के रूप में प्रकट हुआ। यह शोध–पत्र इस बात को स्पष्ट करता है कि किसान आंदोलन केवल आर्थिक समस्याओं का परिणाम नहीं थे, बल्कि वे नीतिगत असंतुलन और प्रशासनिक विफलताओं की प्रतिक्रिया भी थे। अंततः, यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कृषि नीतियों और किसान आंदोलनों के बीच गहरा और परस्पर संबंध है, जिसे समझे बिना टिकाऊ और न्यायसंगत कृषि विकास संभव नहीं है।

मुख्य शब्दः कृषि नीति, किसान आंदोलन, हरित क्रांति, न्यूनतम समर्थन मूल्य, कृषि संकट, कृषि विकास, फसल विविधीकरण, सिंचाई व्यवस्था, भूजल संकट, ऋणग्रस्तता, कृषि आधुनिकीकरण, कृषि सब्सिडी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, भूमि अधिग्रहण, किसान असंतोष, कृषि विपणन, मंडी प्रणाली, कृषि आय, पर्यावरणीय क्षरण, जलवायु परिवर्तन, कृषि उत्पादन, नीति विश्लेषण, ग्रामीण विकास, कृषि संरचना

परिचय

हरियाणा का गठन 1 नवम्बर 1966 को पंजाब के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप हुआ। राज्य के निर्माण के समय इसकी अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि थी और अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि तथा उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर थी। नवगठित राज्य के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थिर आधार प्रदान करना, कृषि उत्पादन को बढ़ाना तथा किसानों को आधुनिक विकास प्रक्रिया से जोड़ना। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हरियाणा ने बहुत शीघ्र भारत के अग्रणी कृषि राज्यों में अपनी पहचान स्थापित की। राज्य की उपजाऊ दोमट भूमि, अपेक्षाकृत समतल भू–आकृति, सिंचाई विस्तार की अनुकूल संभावनाएँ और कृषक समाज की सक्रिय भूमिका ने कृषि विकास के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया। 1960 और 1970 के दशक में जब भारत खाद्यान्न संकट, जनसंख्या वृद्धि और आयात निर्भरता जैसी समस्याओं से जूझ रहा था, तब हरित क्रांति की नीति को राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया गया। हरियाणा इस परिवर्तन का प्रमुख केंद्र बना। उच्च उपज देने वाले बीजों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, ट्रैक्टरों, नलकूपों और नहर आधारित सिंचाई के विस्तार ने कृषि उत्पादन को नई दिशा दी। गेहूँ और धान जैसी फसलों के उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई, जिससे हरियाणा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा का एक महत्त्वपूर्ण स्तंभ बन गया। न्यूनतम समर्थन मूल्य, सरकारी खरीद व्यवस्था, मंडी जाल और कृषि विस्तार सेवाओं ने किसानों को बाजार तथा राज्य दोनों से जोड़ा। इस प्रकार हरियाणा में कृषि केवल आजीविका का साधन न रहकर राज्य की अर्थव्यवस्था, राजनीति और सामाजिक संरचना का केंद्रीय तत्व बन गई।

किन्तु इस विकास का दूसरा पक्ष भी था। उत्पादन वृद्धि का यह मॉडल संसाधन गहन था। भूमि पर रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का लगातार बढ़ता उपयोग मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता को प्रभावित करने लगा। भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन, विशेषकर धान जैसी जल–गहन फसल के विस्तार के कारण, कई क्षेत्रों में जल स्तर तेजी से नीचे जाने लगा। फसल चक्र का संकुचन हुआ और कृषि विविधता घटती गई। खेती की लागत में निरंतर वृद्धि होने लगी, जिसमें बीज, उर्वरक, डीजल, बिजली, मशीनरी और मजदूरी की बढ़ती कीमतों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामस्वरूप, उत्पादन बढ़ने के बावजूद किसानों की वास्तविक आय स्थिर नहीं रही। विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसान इस दबाव को अधिक तीव्रता से महसूस करने लगे, क्योंकि उनके पास संसाधनों, तकनीक और बाजार तक पहुँच सीमित थी। यही वह बिंदु था जहाँ कृषि विकास और कृषि संकट साथ–साथ दिखाई देने लगे। हरियाणा में कृषि नीति का प्रारंभिक उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना था, पर समय के साथ यह स्पष्ट हुआ कि केवल उत्पादन वृद्धि किसानों के समग्र कल्याण की गारंटी नहीं देती। जब लागत बढ़ी, प्राकृतिक संसाधन कमजोर हुए, मूल्य और आय में असमानता बनी रही और नीतियों का लाभ सभी किसानों तक समान रूप से नहीं पहुँचा, तब ग्रामीण समाज में असंतोष

पनपने लगा। यह असंतोष केवल आर्थिक नहीं था। इसमें सामाजिक असुरक्षा, नीति से अपेक्षाएँ, सरकारी उपेक्षा की भावना और ग्रामीण सम्मान का प्रश्न भी शामिल था।

इन्हीं परिस्थितियों ने समय–समय पर किसान आंदोलनों को जन्म दिया। हरियाणा में किसान आंदोलन केवल तात्कालिक समस्याओं की प्रतिक्रिया नहीं थे, बल्कि वे राज्य की कृषि नीतियों, बाजार व्यवस्था, भूमि संबंधों, सिंचाई असमानता, ऋणग्रस्तता और मूल्य संकट के विरुद्ध एक व्यापक प्रतिरोध के रूप में उभरे। किसानों ने समर्थन मूल्य, बिजली दर, सिंचाई सुविधा, कर्ज राहत, फसल क्षति मुआवजा और भूमि अधिग्रहण जैसे मुद्दों पर संगठित होकर अपनी आवाज उठाई। इन आंदोलनों ने यह सिद्ध किया कि कृषि नीति और किसान जीवन के बीच गहरा संबंध है। जब नीतियाँ किसानों के हितों की रक्षा करने में विफल होती हैं, तब आंदोलन लोकतांत्रिक प्रतिवाद का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार, हरियाणा की कृषि यात्रा को केवल सफलता की कहानी के रूप में नहीं देखा जा सकता। यह एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें विकास, असमानता, संसाधन संकट, सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक चेतना एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं।

हरियाणा में कृषि नीतियों का विकास

हरियाणा में कृषि नीतियों का विकास एक समान रेखीय प्रक्रिया नहीं था, बल्कि यह बदलती राष्ट्रीय आवश्यकताओं, खाद्यान्न संकट, बाजार संरचना, पर्यावरणीय दबाव, तकनीकी परिवर्तन और किसान असंतोष के बीच विकसित होने वाली एक दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया थी। 1966 में राज्य गठन के बाद कृषि नीति का प्राथमिक उद्देश्य उत्पादन वृद्धि और खाद्यान्न आत्मनिर्भरता था। धीरे–धीरे इसमें कृषि विस्तार, लागत प्रबंधन, मूल्य सुरक्षा, संसाधन संरक्षण, जोखिम प्रबंधन और डिजिटल निगरानी जैसे तत्व जुड़ते गए। इस पूरी प्रक्रिया को चार प्रमुख चरणों में समझा जा सकता है।

1. हरित क्रांति काल (1966–1980)

हरियाणा में कृषि नीति का महत्वपूर्ण चरण हरित क्रांति का काल था। राज्य गठन के तुरंत बाद हरियाणा को राष्ट्रीय कृषि विकास की प्रयोगशाला की तरह देखा गया, क्योंकि यहाँ उपजाऊ भूमि, सिंचाई विस्तार की संभावना और कृषि को अपनाने वाला सशक्त ग्रामीण समाज उपलब्ध था। इस दौर में अधिकतम उत्पादन सरकार की नीति का केंद्र था। इसलिए उच्च उपज देने वाले बीजों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, ट्रैक्टरों, नलकूपों और नहर आधारित सिंचाई को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया गया। भारतीय कृषि के हरित क्रांति चरण में उच्च उपज देने वाले बीजों और इनपुट आधारित उत्पादन तकनीकों के सहारे गेहूँ उत्पादन में तीव्र वृद्धि दर्ज की गई और यही मॉडल हरियाणा में विशेष रूप से सफल हुआ। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता राज्य की सक्रिय भूमिका थी। किसान केवल बाजार के भरोसे नहीं छोड़े गए, बल्कि उन्हें उर्वरक, सिंचाई, तकनीकी परामर्श और खरीद सुरक्षा के माध्यम से प्रोत्साहन दिया गया। न्यूनतम समर्थन मूल्य और सार्वजनिक खरीद व्यवस्था ने किसानों में यह विश्वास पैदा किया कि यदि वे गेहूँ और बाद में धान जैसी प्रमुख फसलें

उगाएँगे तो सरकार उनकी उपज खरीदेगी। इससे उत्पादन जोखिम कम हुआ और हरियाणा के किसानों ने तेजी से तकनीकी कृषि अपनाई। परंतु इस चरण की एक बुनियादी सीमा भी थी। नीति का उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना था, न कि कृषि का संतुलित, टिकाऊ और विविधतापूर्ण विकास। परिणामस्वरूप कृषि धीरे–धीरे गेहूँ–धान केंद्रित होती गई। इस मॉडल ने अल्पकाल में समृद्धि दी, लेकिन दीर्घकाल में जल, मिट्टी और जैविक संतुलन पर दबाव डालना शुरू कर दिया। बड़े और सिंचित किसानों को इसका लाभ अधिक मिला, जबकि छोटे और सीमांत किसानों की स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर रही। इस प्रकार, हरित क्रांति काल को हरियाणा की कृषि प्रगति का आधार तो माना जा सकता है, लेकिन यही वह चरण भी था जिसमें भविष्य के पर्यावरणीय और संरचनात्मक संकटों की नींव रखी गई।

2. विस्तार और स्थिरीकरण (1980–2000)

1980 से 2000 तक का चरण हरित क्रांति मॉडल के विस्तार, संस्थागत मजबूती और उत्पादन के स्थिरीकरण का दौर था। अब तक हरियाणा कृषि उत्पादन में अपनी पहचान स्थापित कर चुका था। गेहूँ और धान की फसलें राज्य की कृषि अर्थव्यवस्था का केंद्र बन चुकी थीं। इस चरण में सरकार ने कृषि अवसंरचना, सहकारी ऋण, ग्रामीण बिजली, सिंचाई तंत्र, मंडी व्यवस्था और कृषि विस्तार सेवाओं को और मजबूत किया। उत्पादन प्रणाली अब प्रयोगात्मक नहीं रही, बल्कि संस्थागत रूप से स्थिर हो गई। लेकिन यही वह दौर था जब कृषि विकास की सीमाएँ स्पष्ट होने लगीं। उत्पादन तो बढ़ा, पर लाभ का अनुपात उसी तरह नहीं बढ़ा। खेती की लागत निरंतर ऊपर जाने लगी। उर्वरकों, डीजल, मशीनरी, बिजली, मरम्मत, मजदूरी और निजी निवेश के बढ़ते बोझ ने किसानों की आय पर दबाव डाला। सरकार ने इस दबाव को कम करने के लिए सब्सिडी, ऋण सुविधाएँ और रियायती इनपुट उपलब्ध कराए, परंतु इससे केवल तत्काल राहत मिली, संरचनात्मक समाधान नहीं।

इस अवधि में एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। किसान अब केवल उत्पादक नहीं रहे, बल्कि नीतियों के प्रति सजग हितसमूह के रूप में सामने आने लगे। उन्हें यह अनुभव होने लगा कि उत्पादन वृद्धि के बावजूद उनकी वास्तविक आय और सामाजिक सुरक्षा सीमित है। सरकारी समर्थन बना रहा, पर उस समर्थन की प्रकृति ऐसी थी जो कृषि को चालू तो रखती थी, पर उसे अधिक टिकाऊ या न्यायपूर्ण नहीं बनाती थी। इसी कारण इस काल में किसान संगठनों और ग्रामीण लामबंदी की जमीन और मजबूत हुई। पर्यावरणीय स्तर पर भी यह चरण निर्णायक था। सिंचाई आधारित गहन कृषि, भूजल दोहन और रासायनिक निर्भरता ने कृषि संसाधनों पर दबाव को बढ़ाया। भूमि की उर्वरता और जल संतुलन पर नकारात्मक प्रभाव धीरे–धीरे दिखाई देने लगा। इस प्रकार, यह काल सतही रूप से स्थिरता का था, लेकिन अंदर से कृषि व्यवस्था में संकट के संकेत उभर रहे थे।

3. उदारीकरण और वैश्वीकरण (2000–2010)

यद्यपि राष्ट्रीय आर्थिक उदारीकरण 1991 से शुरू हो चुका था, उसका गहरा प्रभाव हरियाणा की कृषि नीति पर अगले वर्षों में अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। 2000 से 2010 के बीच

कृषि नीति में बाजारोन्मुख दृष्टिकोण मजबूत हुआ। प्रतिस्पर्धा, दक्षता, निजी निवेश, आपूर्ति शृंखला, निर्यात की संभावनाएँ और कृषि को व्यवसाय के रूप में देखने की प्रवृत्ति बढ़ी। अब राज्य की भूमिका पूर्ण संरक्षक की बजाय आंशिक नियामक और प्रोत्साहक की ओर बढ़ने लगी। इस परिवर्तन का असर हरियाणा पर मिश्रित रहा। बड़े और संसाधन सम्पन्न किसान बाजार के अवसरों, तकनीक और निवेश का अपेक्षाकृत बेहतर उपयोग कर सके। लेकिन छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह दौर अधिक चुनौतीपूर्ण रहा। वे बढ़ती प्रतिस्पर्धा, लागत में वृद्धि, मूल्य अस्थिरता और विपणन जोखिमों से अधिक प्रभावित हुए। सरकारी खरीद व्यवस्था कुछ प्रमुख फसलों के लिए राहत देती रही, लेकिन सभी किसानों और सभी फसलों को समान सुरक्षा नहीं मिल सकी।

इस काल में कृषि संकट का स्वरूप अधिक जटिल हुआ। पहले जहाँ संकट मुख्यतः उत्पादन या संसाधन की कमी से जुड़ा था, अब उसमें बाजार जोखिम, मूल्य अनिश्चितता, ऋण दबाव और नीतिगत संक्रमण भी जुड़ गया। किसानों को यह महसूस होने लगा कि सरकार उन्हें उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रेरित तो करती है, पर बाजार के उतार–चढ़ाव से पर्याप्त सुरक्षा नहीं देती। यही कारण है कि इस दौर में किसान असंतोष अधिक संगठित और नीतिगत भाषा में प्रकट होने लगा। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस अवधि में कृषि का व्यावसायीकरण बढ़ा, परंतु सुरक्षा तंत्र उतनी गति से नहीं बढ़ पाया। परिणामस्वरूप, खेती की जोखिमशीलता बढ़ी। छोटे किसान कीमतों के झटकों, प्राकृतिक जोखिमों और ऋण पर निर्भर निवेश के कारण अधिक असुरक्षित हुए। इसीलिए उदारीकरण का यह चरण हरियाणा की कृषि में आधुनिकता और असुरक्षा, दोनों का साथ–साथ विस्तार करने वाला दौर था।

4. समकालीन नीतियाँ (2010–2020)

2010 से 2020 का काल हरियाणा में कृषि नीति के पुनर्संतुलन का दौर कहा जा सकता है। अब तक यह स्पष्ट हो चुका था कि केवल गेहूँ–धान केंद्रित, इनपुट–गहन और भूजल निर्भर कृषि मॉडल दीर्घकाल में टिकाऊ नहीं है। इसलिए इस चरण में नीति का ध्यान केवल उत्पादन से हटकर जोखिम प्रबंधन, संसाधन संरक्षण, फसल विविधीकरण, तकनीकी निगरानी और आय स्थिरीकरण की ओर गया। इस अवधि में फसल विविधीकरण पर विशेष बल दिया गया। राज्य ने बागवानी, सब्जियों, फलों और अन्य वैकल्पिक फसलों को बढ़ावा देने का प्रयास किया। हरियाणा के बागवानी विभाग के प्रशासनिक अभिलेखों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विविधीकरण को बढ़ाने और किसानों को कम मूल्य मिलने की स्थिति में राहत देने के लिए योजनाएँ चलाई गईं। उदाहरण के लिए, भवंतर भरपाई योजना हरियाणा में 1 जनवरी 2018 से लागू की गई, जिसका उद्देश्य था कि यदि बागवानी फसलों के बाजार मूल्य संरक्षित मूल्य से नीचे जाएँ तो अंतर की भरपाई किसानों को सीधे दी जाए। इस योजना को विविधीकरण को प्रोत्साहित करने वाली नीति के रूप में प्रस्तुत किया गया।

इसी काल में जल संरक्षण एक केंद्रीय चिंता बनकर उभरा। हरियाणा में धान आधारित कृषि से भूजल पर बढ़ते दबाव को देखते हुए वैकल्पिक फसलों, सूक्ष्म सिंचाई और अधिक

जल–कुशल कृषि पद्धतियों की चर्चा बढ़ी। यद्यपि इन उपायों का पूर्ण प्रभाव हर जगह समान नहीं था, फिर भी नीति–स्तर पर यह स्वीकार किया गया कि कृषि को संसाधन संरक्षण आधारित दिशा देनी होगी। डिजिटल कृषि प्रशासन भी इसी दौर की एक बड़ी विशेषता रही। हरियाणा सरकार का "मेरी फसल, मेरा ब्योरा" पोर्टल फसल पंजीकरण, नीति–लाभ और प्रशासनिक निगरानी के लिए एक महत्त्वपूर्ण कदम था। यह दर्शाता है कि राज्य कृषि प्रबंधन को डेटा–आधारित और डिजिटल रूप से नियंत्रित करने की दिशा में बढ़ रहा था। केंद्र स्तर की योजनाओं में प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना एक महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप थी, जिसे खरीफ 2016 से लागू किया गया। आधिकारिक दिशानिर्देशों के अनुसार इसका उद्देश्य किसानों को प्राकृतिक जोखिमों से होने वाली फसल हानि पर व्यापक सुरक्षा देना, आय को स्थिर करना, आधुनिक कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहित करना और कृषि क्षेत्र की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाना था। इसी तरह मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना ने मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक उपयोग को बढ़ावा देने का लक्ष्य रखा, ताकि किसान मृदा की वास्तविक स्थिति के अनुसार पोषक तत्वों का प्रयोग करें और उत्पादन तथा संसाधन उपयोग दोनों में सुधार हो। आधिकारिक पोर्टल इसे डेटा–आधारित, संसाधन संरक्षण और टिकाऊ कृषि की दिशा में एक प्रमुख पहल के रूप में प्रस्तुत करता है। फिर भी इस दौर की नीतियों की सीमाएँ भी थीं। विविधीकरण को बढ़ावा दिया गया, पर वैकल्पिक फसलों के लिए उतनी मजबूत खरीद और मूल्य सुरक्षा हर जगह उपलब्ध नहीं थी जितनी गेहूँ और धान के लिए थी। फसल बीमा का उद्देश्य व्यापक सुरक्षा था, लेकिन कई राज्यों और अध्ययनों में दावा निपटान, जागरूकता और कार्यान्वयन संबंधी चुनौतियाँ सामने आईं। इस प्रकार 2010–2020 का चरण सुधारवादी अवश्य था, पर पूरी तरह समाधानकारी नहीं।

हरियाणा में किसान आंदोलन

हरियाणा में किसान आंदोलनों का स्वरूप समय के साथ विकसित होता रहा है और यह केवल तात्कालिक आर्थिक समस्याओं की प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि कृषि नीति, संसाधन वितरण, बाजार व्यवस्था और ग्रामीण समाज की बदलती चेतना का परिणाम है। राज्य गठन के बाद से ही किसानों ने अपनी समस्याओं को लेकर आवाज उठाई, किंतु प्रारंभिक चरण में ये आंदोलन सीमित और स्थानीय मुद्दों तक केंद्रित थे। जैसे–जैसे कृषि का आधुनिकीकरण हुआ और किसानों की राज्य से अपेक्षाएँ बढ़ीं, वैसे–वैसे आंदोलनों का स्वरूप अधिक संगठित, व्यापक और राजनीतिक रूप से प्रभावशाली होता गया। हरियाणा में किसान आंदोलनों के प्रमुख कारणों में सबसे महत्वपूर्ण न्यूनतम समर्थन मूल्य से संबंधित मुद्दे रहे हैं। यद्यपि न्यूनतम समर्थन मूल्य ने किसानों को एक हद तक सुरक्षा प्रदान की, फिर भी इसकी वृद्धि, प्रभावशीलता और सीमित फसलों तक केंद्रित होने के कारण असंतोष बना रहा। इसके साथ ही फसल के उचित मूल्य का अभाव एक स्थायी समस्या रही, क्योंकि उत्पादन लागत बढ़ने के बावजूद बाजार में किसानों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाया। इस असंतुलन ने किसानों को बार–बार आंदोलन करने के लिए प्रेरित किया।

ऋणग्रस्तता और आर्थिक संकट भी किसान आंदोलनों का एक प्रमुख कारण रहे हैं। आधुनिक कृषि में बढ़ती लागत, फसल हानि और आय की अनिश्चितता ने किसानों को कर्ज पर निर्भर बना दिया। जब वे ऋण चुकाने में असमर्थ हुए, तो यह आर्थिक दबाव सामाजिक और मनोवैज्ञानिक संकट में बदल गया, जिसने आंदोलनों को और तीव्र बनाया। इसके अतिरिक्त जल संकट और सिंचाई संबंधी समस्याएँ, विशेषकर दक्षिणी और पश्चिमी हरियाणा में, किसानों के असंतोष का महत्वपूर्ण कारण रही हैं। भूजल स्तर में गिरावट और नहर जल के असमान वितरण ने क्षेत्रीय असंतुलन को जन्म दिया, जिससे कई बार बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन हुए। भूमि अधिग्रहण से जुड़े विवादों ने भी किसान आंदोलनों को नई दिशा दी, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ शहरीकरण और औद्योगिक विकास तेजी से हुआ। किसानों ने अपनी भूमि के उचित मुआवजे और पुनर्वास की मांग को लेकर आंदोलन किए, जो केवल आर्थिक नहीं बल्कि सामाजिक और पहचान से जुड़े मुद्दे भी थे। विशेष रूप से 2010 के बाद हरियाणा में किसान आंदोलनों में उल्लेखनीय तीव्रता आई। इस दौर में किसान यूनियनों और सामुदायिक संगठनों की भूमिका अधिक मजबूत हुई। आंदोलन अब केवल स्थानीय मुद्दों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि राष्ट्रीय कृषि नीतियों, बाजार सुधारों और किसान अधिकारों से जुड़े व्यापक प्रश्नों को भी उठाने लगे। इस प्रकार, हरियाणा के किसान आंदोलन राज्य की कृषि व्यवस्था में निहित संरचनात्मक समस्याओं का प्रतिबिंब हैं और यह दर्शाते हैं कि जब नीतियाँ किसानों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पातीं, तब आंदोलन एक संगठित प्रतिरोध के रूप में उभरते हैं।

कृषि नीतियों का किसान आंदोलनों पर प्रभाव

हरियाणा में कृषि नीतियों का किसानों और उनके आंदोलनों पर गहरा और द्वंद्वात्मक प्रभाव रहा है। एक ओर इन नीतियों ने कृषि विकास, उत्पादन वृद्धि और आर्थिक स्थिरता को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर इनके भीतर मौजूद असंतुलन और सीमाएँ किसान असंतोष और आंदोलनों के प्रमुख कारण बने। सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति ने किसानों को बाजार की अनिश्चितता से कुछ हद तक सुरक्षा प्रदान की। इससे विशेष रूप से गेहूँ और धान उत्पादक किसानों को अपनी उपज का न्यूनतम मूल्य सुनिश्चित होने लगा, जिसके कारण उन्होंने अधिक निवेश और उत्पादन बढ़ाने का साहस किया। इसी प्रकार, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार ने कृषि को वर्षा पर निर्भरता से मुक्त कर दिया और उत्पादन को स्थिर एवं नियमित बनाया। नहरों, नलकूपों और बिजली आपूर्ति ने बहुफसली प्रणाली को संभव बनाया, जिससे किसानों की उत्पादकता और आय में वृद्धि हुई। साथ ही, तकनीकी विकास जैसे उन्नत बीज, आधुनिक मशीनरी और वैज्ञानिक कृषि पद्धतियों ने खेती को अधिक कुशल और आधुनिक बनाया, जिससे कृषि एक पारंपरिक गतिविधि से धीरे–धीरे व्यावसायिक स्वरूप की ओर अग्रसर हुई।

किन्तु इन सकारात्मक प्रभावों के साथ–साथ कई नकारात्मक परिणाम भी सामने आए, जिन्होंने किसान आंदोलनों को जन्म दिया। सबसे महत्वपूर्ण समस्या रही खेती की बढ़ती लागत।

उर्वरक, डीजल, मशीनरी और मजदूरी की कीमतों में वृद्धि के कारण किसानों का वास्तविक लाभ कम होता गया। न्यूनतम समर्थन मूल्य सभी लागतों की पूरी भरपाई नहीं कर पाया, जिससे आय और व्यय के बीच असंतुलन उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त, जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन, विशेषकर धान जैसी जल–गहन फसलों के कारण, एक गंभीर पर्यावरणीय संकट के रूप में उभरा। भूजल स्तर में गिरावट ने कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया। छोटे और सीमांत किसानों के लिए स्थिति और भी कठिन रही। वे संसाधनों, तकनीक और बाजार तक सीमित पहुँच के कारण नीतियों का पूरा लाभ नहीं उठा सके। परिणामस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर बनी रही और वे ऋण तथा जोखिम के जाल में फँसते गए। साथ ही, नीतिगत असमानता, जैसे न्यूनतम समर्थन मूल्य का सीमित दायरा और योजनाओं का असमान क्रियान्वयन, किसानों में असंतोष का कारण बना। इस प्रकार, हरियाणा में कृषि नीतियाँ विकास और असंतोष दोनों की वाहक रही हैं। जब नीतियाँ किसानों की अपेक्षाओं को पूरा करने में असफल होती हैं, तब वही किसान संगठित होकर आंदोलनों के माध्यम से अपने अधिकारों और हितों की मांग करते हैं।

निष्कर्ष

हरियाणा में कृषि नीतियों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि राज्य की कृषि प्रगति किसी एक कारण का परिणाम नहीं, बल्कि सुव्यवस्थित नीतिगत हस्तक्षेपों, तकनीकी उन्नति और किसानों की सक्रिय भागीदारी का संयुक्त प्रभाव है। 1966 के बाद हरित क्रांति, सिंचाई विस्तार, न्यूनतम समर्थन मूल्य, सब्सिडी और कृषि आधुनिकीकरण जैसी नीतियों ने हरियाणा को देश के अग्रणी कृषि राज्यों में स्थापित किया। इन नीतियों के कारण उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, खाद्यान्न आत्मनिर्भरता को बल मिला और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक मजबूत आधार प्राप्त हुआ। किन्तु इस विकास के साथ–साथ कई संरचनात्मक समस्याएँ भी उभरकर सामने आईं। कृषि का गेहूँ–धान केंद्रित होना, भूजल का अत्यधिक दोहन, भूमि की उर्वरता में गिरावट, लागत में निरंतर वृद्धि और किसानों की आय में अस्थिरता जैसी चुनौतियाँ समय के साथ गंभीर होती गईं। विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसान इन समस्याओं से अधिक प्रभावित हुए, क्योंकि वे संसाधनों, तकनीकी साधनों और बाजार तक समान पहुँच नहीं रखते थे। इसके परिणामस्वरूप कृषि विकास का लाभ सभी वर्गों में समान रूप से वितरित नहीं हो सका। इसी असंतुलन ने किसानों में असंतोष को जन्म दिया, जो विभिन्न समयों पर किसान आंदोलनों के रूप में सामने आया। ये आंदोलन केवल आर्थिक मांगों तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे नीतिगत असमानताओं, प्रशासनिक कमियों और सामाजिक असुरक्षा की अभिव्यक्ति भी थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि कृषि नीतियाँ केवल उत्पादन बढ़ाने का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे किसानों के जीवन स्तर, सामाजिक न्याय और आर्थिक स्थिरता से गहराई से जुड़ी हुई हैं। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भविष्य में कृषि नीतियों को केवल उत्पादन वृद्धि तक सीमित नहीं रखा जा सकता। इसके बजाय उन्हें संतुलित, समावेशी और टिकाऊ बनाना आवश्यक है। ऐसी नीतियाँ विकसित की जानी चाहिए जो सभी

वर्गों के किसानों, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों, को समान अवसर और सुरक्षा प्रदान करें। साथ ही, जल संरक्षण, फसल विविधीकरण, उचित मूल्य निर्धारण और प्रभावी क्रियान्वयन पर विशेष ध्यान देना होगा, ताकि कृषि क्षेत्र में स्थायी विकास सुनिश्चित किया जा सके और किसान आंदोलनों की आवश्यकता स्वतः कम हो सके।

संदर्भ सूचीः

1. योजना आयोग. (2014). *भारतीय कृषि का विकास और नीतियाँ.* नई दिल्लीः भारत सरकार।
2. कुमार, पी., एवं शर्मा, आर. (2018). हरियाणा में कृषि संकट और किसान आंदोलन. *भारतीय ग्रामीण अध्ययन पत्रिका, 45*(2), 112–125.
3. सिंह, एस. (2012). *हरियाणा में कृषि विकासः प्रवृत्तियाँ और चुनौतियाँ.* नई दिल्लीः अकादमिक प्रकाशन।
4. हरियाणा सरकार, कृषि विभाग. (2021). *हरियाणा कृषि रिपोर्ट.* चंडीगढ़ः हरियाणा सरकार।
5. होड्जसन, जी. (2013). *भारतीय कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विश्लेषण.* नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. शर्मा, वी. पी. (2019). कृषि नीतियाँ और मूल्य समर्थन प्रणाली का विश्लेषण. *आर्थिक एवं राजनीतिक साप्ताहिक, 54*(26), 45–52.
7. स्वामीनाथन, एम. एस. (2006). *राष्ट्रीय किसान आयोग की रिपोर्ट.* नई दिल्लीः भारत सरकार।
8. चंद, आर. (2017). *किसानों की आय दोगुनी करनाः रणनीति और कार्ययोजना.* नीति आयोग, भारत सरकार।